International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

आचार्य विद्यासागर जी के अनुसार गुरु–शिष्य संबंध

डॉ सपना जैन

इतिहास एवं समाजशास्त्र में स्नातकोत्तर, शिक्षा स्नातक (B.ed),शिक्षा स्नातकोत्तर,(M.ed)शिक्षा विभाग से विद्यावाचस्पति (P.hd) फैशन डिजाइंनिग और प्राकृतिक चिकित्सा डिप्लोमा।

ई मेल–drspnajain@gmail.com

प्रस्तुत शोध में आचार्य विद्यासागर जी के अनुसार गुरु–शिष्य संबंध का अध्ययन किया गया है। शिक्षक का कार्य अत्यन्त संवेदनशील व महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि मूर्तिकार एक पत्थर से मूर्ति तैयार करता है, कुम्हार मिट्टी से मूर्ति तथा बर्तन बनाता है, परन्तु शिक्षक भावुक तथा सजीव बालकों को एक अच्छा मानव बनाता है। शिक्षक नई पीढ़ी का निर्माता तथा शिल्पकार है। शिक्षक शिक्षा का सजीव माध्यम है। वह पुस्तकों की नीरसता से नहीं, अपने सजीव सम्पर्क से, शुद्ध आचरण से तथा जीवन की खुली पुस्तक से छात्रों को शिक्षित करता है। इसलिए गुरु के साथ कभी **'था'** नहीं लगता **'है'** ही लगता है क्योंकि 'था' संबंधों को विराम देता है और 'है' गति प्रदान करता है। आचार्य प्रवर का मानना है कि गुरु–शिष्य के मध्य जो संबंध है, वह विचारों का नही श्रद्धा का आत्मीय संबंध है। जगत के सारे संबंध शरीर के संबंध हैं, जो संसार के कारण हैं, परंतु गुरु–शिष्य का संबंध आत्मा का संबंध है। उससे बड़ा आत्मीय एवं भावात्मक संबंध जगत में कोई भी नहीं है। यही कारण है कि गुरु–शिष्य संबंध अध्ययन काल तक ही नहीं, बल्कि सर्वदा बने रहते हैं और यही गुरु शिष्य के संबंधों की सार्थकता है, जो उसे शिक्षा के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाती है। जिससे भारत को सुयोग्य नागरिक मिलेगे और प्राचीन समृद्धशाली भारत की पुनःस्थापना होगी। शोध की प्रकृति दार्शनिक होने के कारण शोधकर्त्री ने शोध हेतु दार्शनिक विधि का चयन किया है। आचार्य प्रवर के विपुल साहित्य में से 20 ग्रंथों का चयन न्यादर्श की सोद्देश्य विधि के माध्यम से किया। दार्शनिक शोध में मानव के अनुभवों पर उनकी सत्यता का प्रतिस्थापन किया जाता है। दर्शन में प्रयोग नहीं किये जा

सकते अतः केवल जीवन के अनुभवों के आधार पर बौद्धिक स्तर पर तार्किक ढंग से चिंतन किया गया हैं।

आचार्य प्रवर ने शिक्षा को शब्द ज्ञान या पुस्तकों तक सीमित नहीं रखा है उनका मानना है कि किताबों की सूचनाएँ विद्यार्थी को एक दिशा तो दे सकती हैं, पर उनसे प्राप्त सूचनाओं को ही अंतिम सत्य मानकर सीमित नहीं रहा जा सकता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी किताबों में इतने डूब गये हैं कि अनुभव करने का समय बच्चे से लेकर पी-एच.डी. तक के शोध छात्र और यहाँ तक की अध्यापकों के पास भी नहीं होता। वर्तमान में इंटरनेट व 'ई–लर्निंग' के माध्यम से विद्यार्थी बहुत अधिक ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं, परन्तु इस ज्ञान को अपने व्यावहारिक जीवन में उतारने में अपने आपको असमर्थ पा रहे हैं।

वर्तमान में शिक्षा मात्र सूचना संसाधन बनकर रह गई है। आचार्य प्रवर का मानना है कि हम पुस्तक से जुड़ें, लेकिन पुस्तकों तक सीमित न रहें, जैसे–मंदिर में भगवान की मूर्ति से कुछ क्षण के लिए हम जुड़कर अगले ही क्षण उस मूर्ति से अलग होकर भगवद्भाव से जुड़ जाते हैं। यदि हम ऐसा नहीं कर पाते हैं तो दर्शन पत्थर के होते है, भगवान के नहीं। उनकी इस अवधारणा ने शिक्षा को भाषात्मक से भावात्मक बना दिया, साथ ही गुरु–शिष्य संबंध के महत्त्व व उनके अनुभव को उन्होंने महत्त्वपूर्ण बना दिया।

भारतीय संस्कृति में गुरु समर्पण की परम्परा विश्व सभ्यता के इतिहास में अप्रतिम स्थान रखती है। एकलव्य से लेकर, बुद्ध आश्रम के शिष्य द्वारा चीनी यात्री की विदाई की गाथाओं से, गुरु–शिष्य के अध्यायों से परिपूर्ण है भारत का अध्याय। गुरु के प्रति इतना समर्पण दुनिया के अन्य देशों में कहीं नहीं है, क्योंकि गुरु पूर्वीय चेतना की खोज है। पश्चिम की भाषाओं में गुरु जैसा कोई शब्द ही नहीं है। गोविन्द की श्रेष्ठता की पहचान गुरु के माध्यम से ही संभव है।

गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूँ पाय।

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।।[1]

कबीरदास ने गुरु को परमात्मा से भी ऊपर रखा है, क्योंकि ये गुरु की ही बलिहारी हैं उन्हीं ने गोविंद को बताया है। आचार्य प्रवर इसकी गहराई में जाकर कहते हैं कि **''गुरु मात्र गोविंद को बताते ही नहीं वरन् उन जैसा बना भी देते हैं। अतः बताय के स्थान पर बनाए शब्द उपयुक्त होगा। वैसे 'बताना' भी एक तरह से 'बनाना' ही है। जब गणित की प्रक्रिया सामने आ जाती है तो उत्तर बताना आवश्यक नहीं रह जाता, उत्तर स्वयं बन जाता है।''** [2] गुरु–शिष्य के आत्मीय संबंध को स्वीकार करने वाले आचार्य प्रवर कहते हैं कि ''गुरु और शिष्य आगे–पीछे दोनों में, अंतर कहाँ।''3आचार्य प्रवर के गुरु–शिष्य संबंधी विचार अत्यन्त गूढ़ रहस्य को समाहित किये हुए हैं।

आचार्य प्रवर जहाँ विद्यार्थी को देश का कर्णधार मानते हैं, वही गुरु को कर्णधार का निर्माता मानते हैं। अतः दोनों का संबंध एक दूसरे से है। गुरु अपने ज्ञान को अनुभूति में उतार कर शिष्य को देते हैं और शिष्य उसे विनय भाव से ग्रहण करता है। गुरु, शिष्य पर उपकार करता है और शिष्य, गुरु पर। आचार्य प्रवर का कहना है कि **''गुरु का उपकार शिष्य को दीक्षा–शिक्षा देने में है, और शिष्य का उपकार गुरु द्वारा मार्ग में चलने से है।''**[4]आपसी सहयोग के बिना दोनों अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकते। शिक्षक अपने व्यक्तित्व तथा ज्ञान के प्रभाव से शिष्य के व्यवहार को परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है, जिससे उसका सर्वांगीण विकास हो सके। शिष्य भी तद्नुरूप बनने का प्रयास करता है। दोनों के सक्रिय सहयोग से शिक्षा प्रक्रिया चलती है। इस प्रक्रिया को चलाने के लिए एक–दूसरे का स्पष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। गुरु को शिष्य की क्षमताओं, रुचियों व आवश्यकता की जानकारी होनी चाहिए और शिष्य भी शिक्षक को समझ सके। ऐसा किये बिना शिक्षा लेने व देने का कार्य सुचारु रूप से नहीं हो सकता।

आचार्य प्रवर ने मूकमाटी महाकाव्य में गुरु–शिष्य संबंध का वर्णन किया है। उन्होंने प्रतीकात्मक रूप शिल्पी को गुरु और माटी को शिष्य माना है, जिसमें पददलिता मिट्टी,

कुशल शिल्पी का सानिध्य पा मंगल कलश का रूप धारण करती है। जहाँ एक ओर शिल्पी पर–हित के भाव से कठोर परिश्रम करता है, वहीं दूसरी ओर मिट्टी समर्पित भाव से तद्रूप ढ़लकर अपना अस्तित्व बनाती है। जिस प्रकार कुशल शिल्पी का परिश्रम व माटी का समर्पण एक मंगल कलश का रूप धारण करता है, उसी प्रकार एक आदर्श गुरु अपने व्यक्तित्व व ज्ञान से संस्कारित कर योग्य शिष्य का निर्माण करता है। जिस प्रकार मिट्टी को कलश तक की यात्रा के मध्य विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है और वह अपनी परिपक्वता को अग्नि परीक्षा देकर सिद्ध करती है। उसी प्रकार गुरु भी साधना के विभिन्न आयामों से शिष्य को निखार कर उसकी चेतना में छिपी–भगवत्ता को प्रकट करता है। शिल्पी अवाँ में पकाने से पहले कलश में जैसी नक्काशी करता है वैसी ही अंत तक रहती है, उसी प्रकार बाल्यावस्था में गुरु शिष्य को जैसे संस्कार देता है वैसे ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसी बात को उन्होंने कहा कि–''जब पौधे पर कोहरा छाया, रहता तब वह धुँधला दिखता है लेकिन जब सूर्य का प्रकाश आता है तब वह पौधा स्पष्ट दिखलाई देने लगता है।''[5]

आचार्य प्रवर के उपरोक्त विचार से यह बात स्पष्ट होती है कि गुरु निःस्वार्थ भाव से अपने शिष्य को ज्ञान प्रदान करें और शिष्य भी पूर्ण समर्पण की भावना के साथ दिये ज्ञान को अपने जीवन में आत्मसात करें। यह तभी संभव है जब दोनों के मध्य स्वस्थ संबंध हो। इन संबंधों को स्वस्थ रखने के लिए आचार्य प्रवर ने चार उपकरण बताए हैं – ''यथाजात रूप, गुरुवचन, विनय और सूत्र का अध्ययन।''6आचार्य प्रवर का मानना है कि शिष्य गुरु के समक्ष जैसा है वैसा ही अपने आपको प्रस्तुत करें। छल, कपट, मायाचारी से अपने आप को दूर रखकर यथाजात रूप में रहे कुछ छिपाये नहीं, क्योंकि गुरु–शिष्य को पहले पढ़ता है फिर पढ़ाता है। गुरु को ही नहीं वरन् उनकी बात को भी मानना है। क्योंकि गुरु जो बोलते हैं वह पूर्व की अनुभूतियों को जीवन में उतारकर स्वयं की अनुभूतियों को उसमें मिलाकर हमें ज्ञान देते हैं। अतः गुरु के वचन अनुभव से भरे होते हैं जिन्हें आचार्य प्रवर **''बोध नहीं शोध वाक्य''**[7] मानते हैं। जिन्हें अपनाकर शिष्य अपनी दिशा ही नहीं वरन् दशा को भी बदल सकता है। आचार्य प्रवर ने विनम्र गुण को समीचीन तप व आत्मविकास का श्रेष्ठ साधन माना है। इसके

विकास से असाध्य कार्य भी साध्य हो जाते हैं। इसी प्रकार गुरु द्वारा प्रदत्त सूत्र जीवन जीने की कला सिखाते हैं। आचार्य प्रवर कहते हैं कि जिस प्रकार ससूत्र सुई घूमती नहीं उसी प्रकार गुरु सूत्र को जीवन में उतारने से शिष्य भटकता नहीं वरन् उसके माध्यम से वह अपने आपको पा लेता है। ये उपकरण मात्र गुरु–शिष्य संबंधों को ही स्वस्थ नहीं बनाते, वरन् समाज व राष्ट्र को नई दिशा भी प्रदान करते हैं।[8]

गुरु–शिष्य के स्वस्थ संबंध नई चेतना जाग्रत करते हैं। जिस प्रकार परिश्रमी किसान अपनी लहलहाते फसल को देखकर आनंदित हो अपनी पीड़ा को भूल जाता है, उसी प्रकार गुरु अपने शिष्य की सफलता को ऊँचाइयों में देखकर आनंदित होते हैं और उनका वह आनंद उनके परिश्रम की थकान को दूर कर देता हैं।

आचार्य प्रवर का कहना है कि मात्र गुरु ही शिष्य पर उपकार नहीं करता, शिष्य भी आज्ञा में चलकर गुरु पर उपकार करता है। **''कर्त्तव्य में दक्षता ही शिष्य की गुरु दक्षिणा''**[9] मानते हैं। आचार्य प्रवर ने मूकमाटी में लिखा है कि ''पूत का लक्षण पालने में''[10] अर्थात् पूत का लक्षण माता–पिता व गुरु की आज्ञा पालने में हैं। यहाँ उनका पालने (झूला) से अभिप्राय पालने (मानने) से लिया है। उनका मानना है कि वही सच्चा सपूत है।

प्रत्येक शिष्य का यह कर्त्तव्य है कि गुरु ने जो उन्नति का मार्ग बताया है, उस पर चलकर अपना सर्वांगीण विकास करे और इस परम्परा को अक्षुण्य बनाये, ताकि आने वाले व्यक्ति को यह मार्ग मिले, इसलिए गुरु के साथ कभी **'था'** नहीं लगता **'है'** ही लगता है क्योंकि 'था' संबंधों को विराम देता है और 'है' गति प्रदान करता है। आचार्य प्रवर का मानना है कि गुरु–शिष्य के मध्य जो संबंध है, वह विचारों का नही श्रद्धा का आत्मीय संबंध है। जगत के सारे संबंध शरीर के संबंध हैं, जो संसार के कारण हैं, परंतु गुरु–शिष्य का संबंध आत्मा का संबंध है। उससे बड़ा आत्मीय एवं भावात्मक संबंध जगत में कोई भी नहीं है। यही कारण है कि गुरु–शिष्य संबंध अध्ययन काल तक ही नहीं, बल्कि सर्वदा बने रहते हैं और यही गुरु शिष्य के संबंधों की सार्थकता है, जो उसे शिक्षा के अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाती है।

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

इस प्रकार आचार्य प्रवर ने अपने साहित्य व प्रवचनों के माध्यम से गुरु–शिष्य का एक आदर्श रूप प्रस्तुत किया है। गुरु शब्द पूर्वीय चेतना की खोज है। गुरु–शिष्य का संबंध बड़ा गहरा होता है, जिसके साथ कभी था नहीं लगता। आचार्य प्रवर ने मात्र गुरु–शिष्य संबंधों की तो चर्चा नहीं की वरन् उन्हें कैसे स्वस्थ रखा जाए, के भी उपाय बताए हैं। उन्होंने गुरु–शिष्य के संबंधों को दुनिया का सबसे पवित्र संबंध माना है, क्योंकि मात्र वही संबंध ऐसा है, जो आध्यात्मिकता से जोड़कर शिक्षा के अंतिम लक्ष्य को प्रदान कराता है।

गुरु एवं शिष्य की जो पूर्व अवधारणा थी आज वह मात्र शिक्षक–विद्यार्थी के बाहरी संबंधों की होकर रह गई है। इसमें आत्मीयता का पूर्ण अभाव है। शिक्षक और विद्यार्थी में जो स्नेह भाव आत्मीयता, सौहार्द्र, समीपता होनी चाहिए वह आज नहीं दिखाई दे रही है। आज विद्यार्थियों द्वारा शिक्षको का मूल्यांकन हो रहा है। यही कारण है कि आज विद्यार्थी डिग्री तो प्राप्त कर लेता है, लेकिन व्यावहारिक जीवन में शिक्षक के चरित्र, ज्ञान एवं आदर्श व्यक्तित्व को अपने जीवन में नहीं उतार पाता है, परिणामतः शिक्षक–विद्यार्थी के मध्य गुरु–शिष्य के सम्बन्ध नहीं बन पाते। केवल कुछ अक्षरीय ज्ञान दे देने, एक निश्चित समय तक कक्षा में कुछ पढ़ा देने के बाद शिक्षक यह मानते हैं कि उनके कर्त्तव्य की इतिश्री हो गयी है तथा पाठ पढ़ने के बाद विद्यार्थी के कार्य की। शिक्षक छात्रों को निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। आज गुरु–शिष्य के संबंध, परीक्षा, पाठ्यक्रम एवं धनार्जन पर आधारित हैं। उपरोक्त कारणों से उनके आपसी संबंध घनिष्ठ और एक दूसरे के प्रति उत्तरदायित्त्व के भाव युक्त नहीं हो पाते हैं। अतः वे जीवन निर्माण के व्यावहारिक ज्ञान से वंचित रह जाते हैं।

परिणामतः शिक्षा अपनी दिशा व दशा के संदर्भ में भ्रमित और खोखली होती जा रही है। यही कारण है कि अत्यधिक पढ़–लिख जाने के बाद भी विद्यार्थी उद्दण्ड और असामाजिक दिखाई दे रहे हैं। इस स्वार्थ केन्द्रित शिक्षा के चलते आत्मीय गुरु–शिष्य संबंध, शिक्षक–विद्यार्थी में परिवर्तित, खोखले और औपचारिक होते जा रहे है। आचार्य प्रवर का मानना है कि

गुरु–शिष्य के संबंध पाठ्यक्रम की सीमाओं में बंधे नहीं होते हैं। शिष्य के समर्पण और गुरु की तत्परता व वात्सल्य शिक्षा को अधिक बोधगम्य व जीवन्तता प्रदान करते हैं। उनके अनुसार यदि गुरु–शिष्य संबंध वात्सल्य व समर्पण पर आधारित होंगे तभी विद्यार्थी में संयम, अनुशासन, एकाग्रता जैसे मानवीय गुणों का विकास संभव होगा। वे शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास चाहते हैं, जो गुरु–शिष्य के आत्मीय संबंधों पर अवलंबित है।

आचार्य प्रवर ने गुरु–शिष्य संबंध को गहराई से अनुभव किया है इसलिए गुरु–शिष्य के संबंध में उनकी अवधारणा अत्यंत उच्चस्तरीय है। उन्होंने इस संबंध को शब्दों या पुस्तकों तक सीमित नहीं रखा वरन् प्रतिक्षण जिया है, शिष्य बनकर भी और गुरु बनकर भी। उनका मानना है कि ये पवित्र संबंध पाठ्यक्रम से बंधे नहीं होते अपितु जीवंत होते है। उन्होंने गुरु को सर्वश्रेष्ठ स्थान देते हुए कहा है कि गुरु गोविंद तक पहुँचने का मार्ग ही नहीं बताते, वरन् गोविंद ही बना देते हैं। वे गुरु–शिष्य संबंध को दोनों ओर से चलने वाली प्रक्रिया मानते हैं क्योंकि जहाँ एक ओर गुरु अपने ज्ञान के माध्यम से शिष्यों पर उपकार करते हैं वहीं शिष्य, गुरु की आज्ञा का पालन कर अप्रत्यक्ष रूप से गुरु पर उपकार करता है। यही गुरु–शिष्य संबंध की चरम सार्थकता है, जो शिष्य को अंतिम लक्ष्य तक पहुँचाती है।

आचार्य प्रवर की गुरु–शिष्य अवधारणा गुरुकुल कालीन पद्धति के सादृश्य है जहाँ गुरु का अधिकतर समय शिष्य को योग्य बनाने में ही लगा रहता है। आदर्श गुरु के सान्निध्य में रहकर विद्यार्थी ज्ञान व अनुभव प्राप्त कर अपने व्यक्तित्व को कंचन सा तपाकर सर्वांगीण विकास करता है। विद्यार्थी अपने चरित्र की गहराई व ऊँचाई को विकसित करता था, उस व्यवस्था को ज्यों का त्यों पुनः लौटाया तो नहीं जा सकता, परन्तु जिन आदर्शों के आधार पर यह व्यवस्था संचालित हुई थी उन्हें आचार्य प्रवर की संकल्पना द्वारा पुनः स्थापित करने का प्रयास किया जा सकता है, जिससे गुरु–शिष्य की अवधारणा न केवल क्षैतिज विकास करने में समर्थ होगी, बल्कि आंतरिक विकास करने में भी सफल होगी। अतः वर्तमान समय में आचार्य प्रवर द्वारा प्रतिपादित गुरु–शिष्य संबंध अत्यन्त प्रांसगिक हैं।

1. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र (खण्ड चार), समग्र प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 32।
2. उपर्रोक्त।
3. आचार्य विद्यासागर, हाइकू, (संकलन कर्त्री), पूज्य 105 आर्यिका अंतर्मति माता जी।
4. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र (खण्ड चार), समग्र प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 548।
5. आचार्य विद्यासागर, विद्यार्थी की संकल्पना, आडियो सी.डी., जबलपुर, मध्यप्रदेश, दिनांक 16 सितम्बर 2009।
6. आचार्य विद्यासागर, (1996), आदर्शों के आदर्श, वीर सेवा संघ, गुजरात, पृ.सं. 4।
7. मुनि कुंथुसागर, (2011), परमार्थ देशना, (आचार्य विद्यासागर के विचार सूत्रों का संग्रह), धर्मोदय साहित्य प्रकाशन, सागर,, पृ.सं. 45।
8. आचार्य विद्यासागर, (1996), आदर्शों के आदर्श वीर सेवा संघ, गुजरात, पृ.सं. 7।
9. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र (खण्ड चार), समग्र प्रकाशन, सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 54।
10. आचार्य विद्यासागर, (1996), समग्र (खण्ड चार), समग्र प्रकाशन सागर, मध्यप्रदेश, पृ.सं. 417।